IJNRD.ORG ISSN : 2456-4184
INTERNATIONAL JOURNAL OF NOVEL RESEARCH AND DEVELOPMENT (IJNRD) | IJNRD.ORG
An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

वाचिक परम्परा के ‘ बनाफरी लोकगीतों ’ में लोकसंस्कृति के दर्शन

ज्योति
पी-एच.डी. शोधार्थी (हिन्दी विभाग)
हिन्दी अध्ययन शाला एवं शोध केन्द्र
महाराजा छत्रसाल बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.)
मो. 9754126434 jyotikushwahachp94@gmail.com
शोध-निर्देशक : डॉ. कुंजीलाल पटेल
सह प्राध्यापक (हिन्दी विभाग)
हिन्दी अध्ययन शाला एवं शोध केन्द्र
महाराजा छत्रसाल बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.)
सत्र 2022-23
दिनांक – 16/10/2022

शोध सारांश

बनाफरी भाषा एवं संस्कृति पर अपने व्याख्यान में डॉ. कुंजीलाल पटेल का मानना है कि चंदेलकालीन मध्यभारत में जहां-जहां तक भौगोलिक, प्राकृतिक, राजनैतिक, प्रशासनिक, सामाजिक क्षेत्र में चंदेलों की राजसत्ता का प्रभुत्व था, वहां- वहां तक 8वीं शताब्दी से 13-14वीं शताब्दी तक ग्रामीण क्षेत्रों की साहित्यिक, लोकसाहित्यिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों की प्रवृत्तियों में बनाफरी बोली, विभाषा एवं भाषायी स्वरूप देखने को मिलता है।

बनाफरी क्षेत्र लोकगीतों की दृष्टि से हमेशा समृद्ध रहा है । लोकजीवन के हर क्षेत्र में लोकगीत समाए हुए हैं। लोकगीत 'वाचिक परम्परा' के द्वारा सदियों से अपना अस्तित्व और अपनी संस्कृति को संजोए रखे हैं। बनाफरी लोकगीत इस क्षेत्र के लोकसंस्कृति को प्रतिबिम्बित करने में सक्षम हैं।

लोकजीवन से जुड़े लोकगीत हमारी संस्कृति की संगीतमय अभिव्यक्ति हैं । वास्तव में लोकगीतों का मुख्य उद्देश्य जीवन को आनंदमय बनाना है । इन लोकगीतों को सीखने के लिए विशेष तालीन की जरूरत नहीं पड़ती और यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक 'वाचिक परम्परा' के द्वारा हस्तान्तरित होते रहते हैं, इसलिये लोकगीतों को 'जीवनरेखा' कहा जाता है।

बनाफरी लोकगीत लोकसंस्कृति, लोकइतिहास और लोकजीवन के आदर्शपक्ष के अनुगान हैं। जिस दिन लोक, संस्कृति से कट जायेगा उस दिन वह लोकगीतों से भी कट जायेगा। लोकगीतों की गतिशीलता संस्कृति की अविछिन्न परम्परा की जीवन्तता का प्रमाण है। जिस दिन लोकगीत नहीं रहेंगें संस्कृति की गतिशीलता खुद नष्ट हो जायेगी।

वास्तव में लोकगीत केवल ग्रामीण ही नहीं बल्कि राष्ट्रीय संस्कृति का सच्चा दर्पण होता है। अतः निःसंदेश कहा जा सकता है कि 'वाचिक परम्परा' के 'बनाफरी लोकगीतों' में लोकसंस्कृति के दर्शन किये जा सकते हैं।

मूल शब्द : वाचिक परम्परा, बनाफरी लोकगीत, लोकसंस्कृति

प्रस्तावना

लोकगीत कब पहली बार गाया गया ? या किसने परिकल्पना की होगी ? यह शोध का एक अलग विषय है पर यह गीत जरूर अनुभूति, नितांक और लौकिक होगा | तभी तो कहा जाता है कि लोकगीत लोकसंस्कृति से जुड़े हैं उन्हें अलग नहीं किया जा सकता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक जाने कितने संस्कार, पर्व, उत्सव, व्रत-उपवास इत्यादि प्रक्रियाऐं घर के बूढ़े-सयाने के निर्देशों से ही होती आयीं हैं। यह सब मौखिक या वाचिक परम्परा में चला आ रहा है। यह लोकगीतों की धरोहर वाचिक परम्परा के द्वारा प्रवाहित हो रही है।

प्रसिद्ध समाजशास्त्री 'डॉ. श्यामाचरण दुबे' ने इसके वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालते हुए कहा है "मौखिक परम्परा अधिकांशत: अज्ञात नाम होती है। सामान्य अर्थ में वह सामूहिक अनुभव और प्रज्ञा का प्रतिनिधित्व करती है। उसे जो कुछ विभिन्न स्त्रोतों, व्यक्तियों, बाह्य समूहों और आन्तरिक समूहों से प्राप्त होता रहता है उसे वह अदृश्य रुप में आत्मसात करती जाती है । अनुभव के माध्यम से अनेक पीढ़ियों के द्वारा प्राप्त की गई शिक्षायें इसमें निश्चित रूप पाती है ।"[1]

लोकगीत जीवन के कई पाठ सिखाते हैं तथा हमारी संस्कृति के संरक्षक बने हुए हैं। बनाफरी लोकगीतों में लोकसंस्कृति के हर पहलु के दर्शन होते हैं। वाचिक परम्परा के लोकगीत हमारी लोकसंस्कृति के वाहक रहे हैं। इस परम्परा के संदर्भ में 'आचार्य विद्यानिवास मिश्र' का कथन है कि "वाचिक परम्परा के कारण संस्कृति की निरन्तरता बनी रहती है । वाचिक परम्परा केवल बोली जाने वाली भाषा ही नहीं यह जीवन दर्शक भी है।"[2]

लोकगीतों को लोकसंस्कृति का पर्याय कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। "लोकगीत लोक के गीत हैं जिनको एक व्यक्ति नहीं बल्कि पूरा लोक समाज अपनाता है। सामान्यत: लोक में प्रचलित लोक द्वारा रचित लोक के लिए लिखे गए गीतों को लोकगीत कहा जा सकता है। लोकगीतों का रचनाकार अपने व्यक्तित्व को लोक समर्पित कर देता है। शास्त्रीय नियमों की विशेष परवाह न करके सामान्य लोक व्यवहार के उपयोग में लाने के लिए मानव अपने आनंद की तरंग में जो छन्दोबद्ध वाणी उद्‌भूत करता है, वही लोकगीत हैं।"[3]

हमारे लोकगीत लोकदर्शन का माध्यम होते हैं। लोकदर्शन तथा लोकसंस्कृति का एक-दूसरे के साथ गहरा संबंध है। 'डॉ. नर्मदाप्रसाद गुप्त' ने लोकदर्शन तथा लोकसंस्कृति के विषय में कहा है कि "लोकदर्शन लोकसंस्कृति की आत्मा है जो उसे चेतना की संजीवनी देकर हमेशा जीवित रखती है। उस पर न तो दार्शनिकों का ध्यान गया और न लोकसंस्कृति के विद्वानों का वे तो विशिष्ट दर्शनों के अनुशीलन में लगे रहे और सिद्धांतों के तंग गलियारों में भटकते रहे लेकिन उन्होंने एक आदमी के दर्शन को उठाकर नहीं देखा । अगर गहराई में जाए तो लोकदर्शन, लोकसंस्कृति का मस्तिक है और लोकदर्शन के बिना लोकसंस्कृति का अध्ययन करना संभव नहीं है।"[4]

"लोकगीत चाहे किसी भी क्षेत्र के हों वे हमारे प्राचीन परम्पराओं, रीति-रिवाजों, धार्मिक एवं सामाजिक जीवन की संस्कृति के द्वेवतक हैं।"[5]

जब बात 'बनाफरी लोकगीतों' की आती है तो आल्हा-ऊदल का चित्रण हमारे मनोचित्त में उत्पन्न हो जाता है। आल्हा की वीर रस से परिपूर्ण पंक्तियों का गायन हमारे ऊर्जा संचार को बढ़ा देता है तथा भुजायें फड़फड़ाने लगती हैं। बनाफरी में 'आल्हागीत' की निम्न पंक्तियां पन्ना जिला ग्राम चांदीपाठी के बङकूअहीर से संकलित की गई है जिनके बोल हैं -

'सजी बारात मलखे की लय दल कियो पयान
पनियर के सरहद मा घलो चंदेलन सान
परो आज गिउड़े पै ऊदल लाल
तम्बू तनगे झंडा आसमान फहराते रख लेजो लाज'

लोकजीवन में संस्कारों का विशेष महत्व होता है। जन्म और विवाह के समय विविध प्रकार के लोकगीत गाये जाते हैं। जन्म के समय यहां की औरतें सोहर गाती हैं तथा जन्म के बारहवें दिन कुंआपूजन की रस्म होती है । सोहर की कुछ पंक्तियां पन्ना जिला ग्राम लोढ़ापुरखा की रामबाई कुशवाहा से संकलित की गई है जिनके स्वर हैं -

'जल भर ले हिलोर हिलोर लजुरिया रेशम की
रेशम लजुरिया जबै नीके लागे
जब पतरी सी धनिया होय लजुरिया रेशम की'

जन्म संस्कार के सभी कर्मकाण्डों छठीपूजन, मुंडन तथा चगेली में अनेक लोकगीत प्रचलित हैं। चगेली प्रथा में जन्मे शिशु की बुआ चगेली को गांव में भ्रमण कराती है तथा बतासे का वितरण भी कराती है।

इसीतरह विवाह संस्कार में बनरी-बनरा, छईमाटी, चीकट,तेलचढ़ाव, निकासी, टीका, जयमाल, नगचढ़ाव, कनाहर, भांवर, कन्यादान, क़लेवा, दाई-बाबा, निहारन, वर-वधु बधाई एवं दादर की रस्म में अनेक लोकगीत प्रचलित हैं।

इनमें से कुछ रस्मों में गाये जाने वाले बनाफरी लोकगीत निम्न हैं -

'आज अंगन हिलाहिल बिरन आय रे
आवा दिवरनियां जिठनियां बिरन चीकट लाए रे'
(चीकट)

'लै लो लै लो मटकिया का दूध नई आई ग्वालिनियां
नई है मटकिया नई है ग्वालिनियां
नओ है कलोरी का दूध नई आई ग्वालिनियां'
(दाई-बाबा)

लोकगीत लोकजीवन में इसप्रकार रंगे-बसे हुए हैं कि यहां के लोग खेतों या घरों में काम करते हुए लोकगीतों का गायन करते हैं। किसी कार्य विशेष के लिए अलग-अलग बनाफरी लोकगीत परिलक्षित हैं जैसे- बुबाई, निंदाई, पिसाई, छबाई, पानी भरने में तथा रोटी बनाने में इत्यादि कार्यों में वहां का जनमानस गीतों को गुनगुनाता है जिनमें से कुछ पंक्तियों के बोल हैं-

'जब जुंढी के परी रे बबाई गालर गेर म्याड़ फिर आई
जब जुंढी मा भय रे दुइ दुइ पात व्यवहरन ने पूछी बात
जब जुंढी मा चढ़गा रे गादा लरका कहैं न सूधे दादा'
(जुंढी की बुबाई)

'पतरी सी धनिया पनियां का निकरी ल्याई घयेलना फोर मोरेलाल
सास वाखै मारे ननद गरयाबै देवरा ने दीन निकार मोरेलाल'
(पानी भरने में)

समाज विभिन्न जातियों से मिलकर बना है। बनाफरी क्षेत्र में अलग-अलग जाति के लोग निवास करते हैं। जिनके गीत अपने-अपने जाति से संबंधित होते हैं जैसे- काछी जाति द्वारा कछयाना, कोरी जाति द्वारा कुरयाना, कुम्हार जाति द्वारा कुम्हरयाना इत्यादि लोकगीत मुखरित हैं। जिला छतरपुर ग्राम लुदगांव वासियों से कुछ पंक्तियां संकलित की गई है जो निम्न है-

'मिर्चा द्वारै भाटा मुरयारै नकसा देख कछिनियन का
लइकै खुरपी धान निराबै नकसा देख चमरियन का
काकुन द्वारै नथुनी हलाबै नकसा देख लुधइनिन का'

धार्मिक गीतों की बहुलता इस क्षेत्र में विशेषकर देखने को मिलती है। कुछ धार्मिक गीत निम्नप्रकार हैं जैसे- भजन, कीर्तन, होमा, हरदोल गीत एवं कुलदेवताओं से संबंधित गीत गाये जाते हैं –

'देशा बुन्देला के हो लाला पियारे भले हैं लछार हो
कोया बधाय हो चबूतरा लाला पियारे कोया धराय रज खम्ब '
(हरदोलगीत)

'हनुमत है रखवारे पवनजू के हनुमत है रखवारे
हमरे देवबाबा अइसे गरुजै जइसे इन्द्र अखाड़े'
(कुलदेवता)

लोकगाथाऐं, लोकसंस्कृति का अभिन्न अंग मानी जाती हैं। यह क्षेत्र लोकगाथाओं से भरा पड़ा है। विशेषकर आल्हा यहां की प्रमुख गाथा है। इसके अतिरिक्त हरदोल, ढोलामारू इत्यादि पर कई प्रकार के लोकगीतों का गायन यहां के जनसमूह द्वारा होता है।

'मैं मारु गड़रिया के बेटी, राजा के बेटी मारू
घुड़रा लेके जाओ राजा, लेओ गमन घर जाय'
(ढोला-मारू)

समाज संस्कृति का अभिन्न अंग या हिस्सा माना जाता है। बिना समाज के संस्कृति अधूरी होती है। इस क्षेत्र में ननद-भौजाई, सास-बहु, देवर-भौजाई, पति-पत्नी, जीजा-साली, बहिन-बहिन इत्यादि सगे-संबंधियों पर लोकगीत गाये जाते हैं जो बहुत ही मधुर तथा मनोरंजक होते हैं।

'जिब लुक्की मोरी दीदी अइसे घर मा कइसे खटइहौं मोरी दीदी
बारा बोझ गुड़ारी छोल्यों तऊ कहैं घर बइठी
घर बइठी मोरी दीदी अइसे घर मा कइसे खटइहौं मोरी दीदी'

बनाफरी क्षेत्र विभिन्न प्रकार के तीज-त्यौहारों से समृद्ध रहा है। यहां पर कई प्रकार के पर्व जैसे- हरछठपूजा, साते-संतान, तीजा, अकतीपूजन, महाबुलिया, कजिलियां, महालक्ष्मी कृष्ण-जन्मअष्टमी इत्यादि प्रचलित है जिस पर कई प्रकार के लोकगीतों का गायन होता है जो हमारी संस्कृति को दिखाते हैं -

'महाबुलिया के आ गय लिबउआ महाबुलिया चमक चली
ल्यावा ल्यावा गेंदा के फूल सजइये महाबुलिया'
(महाबुलिया)

'अकती पूजै कइसे जांव री बरा तरे ठाड़े लिबउआ
पहले लिबउआ बारे ससुरा जो आये'
(अकतीपूजन)

'आसों के समय राजा सामनवा भींज गय
रचइबे राजा रचनी मेंहेदिया राजा सामनवा भींज गय'
(कजिलियां)

इसीप्रकार सावनगीत, कार्तिकगीत, फाग, लमटेरा लोकगीतों का गायन महिलायें बहुत उत्साहपूर्वक करती हैं। जिनके बोल हैं -

'राम राम की कोठरी रे मोरे प्यारे चंदन जड़े किमार
तारा लागे प्रेम के हो मोरे प्यारे खोलो श्रीभगवान'
(लमटेरा)

इन परम्पराओं के अलावा गारी, राई, साखी, बलमा, दिवारी इत्यादि का गायन इस क्षेत्र के लोग उल्लास एवं मनोरंजन के साथ करते हैं। गड़रिया समाज से कुछ पंक्तियों के बोल संग्रहित किये गये हैं जो इसप्रकार हैं-

'अरे रामा जब मैं छोटी बादी सइंयां मोरे मांगै गमनवा
अरे मैं भइती बारा बरस कै सइंयां मोरे छांय दखिनवा'
(बलमा)

'बेला के ब्याहे मा नौ लख पूजी कपला गाय
अव मोरे ब्याहे मा दादा अनगा मा धरा रही धार'
(साखी)

बनाफरी क्षेत्र में मोरपंख लेकर नृत्य के साथ दिवारी लोकगीत का गायन होता है। दिवारी में नवयुवक कुल्हाटी, घाई तथा बिच्छू रेंगने की प्रतियोगिता में भाग लेते हैं और पुरूस्कार जीतते हैं। दिवारी के बोल इसप्रकार हैं-

'अरे आई दिवारी जात है अव अहिर दइगे दोष रे
ख्यालत बनै तौ खेल ले नहीं लौउटों कातिक मास रे'

उपर्युक्त लोकगीतों की विवेचना से यह स्पष्ट होता है कि 'बनाफरी लोकगीत' लोकजीवन के हर पहलु जैसे रीति-रिवाज, आचार- विचार, सुख-दुख, रहन-सहन, परम्परायें, धार्मिक मान्यतायें इत्यादि को रेखांकित करते हैं। लोकगीतों के संबंध में 'आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी' ने कहा था कि "अगर पुरातत्व विभाग के लोग क्षमा करें तो मैं यह कहना चाहूँगा कि प्राचीन लोकगीतों का महत्व किसी मोहनजोदड़ो; हड़प्पा से कम नहीं है।"

संदर्भ सूची

(1) डॉ. श्यामाचरण दुबे, "परम्परा और परिवर्तन" 'मौखिक परम्परायें और संस्कृति विकास' शीर्षक लेख से पृष्ठ सं.104, भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली संस्करण, 2008

(2) आचार्य विद्यानिवास मिश्र, "देश,धर्म और परम्परा" 'हमारे देश की वाचिक परम्परा' शीर्षक लेख से पृष्ठ सं.55, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली संस्करण, 2010

(3) सम्मेलन पत्रिका 'लोक संस्कृति अंग' पृष्ठ सं. 250

(4) डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त, "बुन्देलखण्ड की लोकसंस्कृति का इतिहास" 'लोकदर्शन' शीर्षक लेख से राधाकृष्ण प्रकाशन, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, प्रथम संस्करण, 1995

(5) ब्रिजभूषण शर्मा 'लोकगीत' प्रकाशन TN भार्गव एवं सन्स, 1983

(6) जनकृति पत्रिका वाचिक परम्परा की प्रासंगिकता: कथा-कहन का परिप्रेक्ष्य - प्रो. मृदुला शुक्ल, 7अक्टूबर 2021

(7) भारतीय धरोहर पत्रिका में प्रकाशित लेख 'लोकसंस्कृति का पर्याय हैं लोकगीत'

International Research Journal
IJNRD
Research Through Innovation